1900 ई. के बाद अंग्रेजों का पूर्वी राजस्थान पर वर्चस्व

*डॉ. गिरधारी लाल मीणा

शोध सारांश

ब्रिटिश संरक्षण में भारत की देशी रियासतों का प्रशासन अनिवार्य रूप से एकतंत्रात्मक प्रकृति का था। परम सत्ता को छोकर रियासत का शासक ही अपने–आप में राज्य था। किसी भी रियसत में कानून का शासन नहीं था। शासक या राजा जन–साधारण की पहुँच के बाहर था तथा वह अंगूठी में लिपटे नग की तरह रहता था। अतः राजा और प्रजा के मध्य एक विस्तृत खाई रहती थी। प्रशासनिक तंत्र बाबा आदम के जमाने का था तथा वह जनता के दुःख–दर्द के प्रति असंवेदनशील एवं उसकी आवश्यकताओं के प्रति असहानुभूतिपूर्ण रवैया रखता था। श्री जवाहर लाल नेहरू के अनुसार अधिकतर रिसायतें प्रतिक्रिया एवं अकुशलता की पर्याप थी। ये अतीव के राज्यों से पूर्व ब्रिटिश इण्डिया के सच्चे उत्तराधिकारी होने की दावेदार थी, पर वस्तुतः ये मध्यकालीन परम्पराओं के टापू थे, जो वर्तमान दुनियाँ के सम्पर्क से दूर थे। राजा लोग उन परम्पराओं के उत्तराधिकारी थे, जिनका गत्यात्मक दुनिया में कोई स्थान नहीं था। उन्होंनं प्रशासनिक तंत्र में कुशलता लाने का तो प्रयास किया, परन्तु उन्होंनं प्रजा की इच्छाओं एवं कल्याण की उपेक्षा की। प्रशासनिक कार्य कुशलता एक अच्छी सरकार की कसौटियों में से एक है। सभी शासन प्रणालियों करा परम ध्येय प्रजा में सशक्त राजनैतिक जीवंतता, देशभक्तिपूर्ण निष्ठा एवं सामाजिक एकता की भावना पैदा करना होना चाहिए। कोई भी सरकार जो प्रजा के स्नेह पर आधारित नहीं होता तथा जो सार्वजनिक मामलों में रूचि तथा सक्रिय बुद्धिमान और सजग नागरिकता की भावना जागृत न करे, आदर्श सरकार नहीं कही जा सकती एवं कोई भी सरकार जिसमें लोगों की सहभागिता न हो, अच्छे नागरिक पैदा नहीं कर सकती थी। प्रजा को क्रमिक रूप से सत्ता में भागीदार बनाकर शासक उनसे राज्य सम्बन्धी चिन्ताओं से जुड़ने की उम्मीद कर सकते थे। मुन्जे ने 1933 में सही कहा था, 'उनकी (राजाओं की) मुक्ति इसी बात में थी कि वे अपनी प्रभुसत्ता अपनी प्रजा को, जिससे वह उन्हें प्राप्त हुई है, हस्तान्तरित कर दे, ताकि आपात काल में प्रजा परम सत्ता पर रोक लगाने में उनकी मदद कर सके, यह कार्य राजा अकेला नहीं कर सकता।'

भारत में कुछ प्रगतिशील राजाओं ने अपनी रियासतों में प्रतिनिधि संस्थाएँ प्रारम्भ की थी, परन्तु उन्होने यह कार्य पूरे मन से नहीं किया तथा उनका संवैधानिक सुधारों की ओर कदम धीमें और सुस्त थे। प्रतिनिधि सभाओं तथा परिषदों से परामर्श मात्र शिष्टतावश लिय जाता था, न कि अधिकारवश तथा उनके निर्णय राजाओं के लिए बाध्य भी नहीं होते थे। स्थिति यह थी कि अधिकांश मामलों में एकतंत्रात्मक शासन ही खुले रूप में जारी था तथा कुछ रियासतों में यह प्रजातंत्र के आवरण के नीचे चल रहा था। यह सत्य है कि रियासतों में जनतांत्रिक संस्थाओं को पर्याप्त अवसर प्राप्त नहीं थे तथा उसे पनपने का पर्याप्त अवसन भी उपलब्ध नहीं था। कई पीढ़ियों तक रियासतों की प्रजा को , 'जनतंत्र धीरे उगने वाले पौधे की तरह थी।' परन्तु राजा लोग यह भूल गये कि उनकी सुरक्षा बदलते हुए

जमाने के साथ कदम–ताल करने मे है। चिन्तामाणि ने 1930 में राजाओं को चेतावनी दी कि बुद्धिजीवी जो आज सोच रहे है, वह कल सामान्य प्रजा सोचेगी एवं यदि बुद्धिजीवियों को हीन भावना से देखा जायेगा तो जनसाधारण किसी समय एकतंत्र को उखाड़ फेकेंगी।

रियासतों में राजनैतिक जड़ता के लिए परम सत्ता की नकारात्मक अभिवृत्ति ही काफी हद तक उत्तरदायी थी। साम्राज्यवादी सरकार का मानना था कि ब्रिटिश राज्य का सम्बन्ध राजाओं से है न कि प्रजा से। इस प्रकार के आधार पर आगे बढ़ते हुए परम सत्ता ने रियासतों में राजनैतिक आन्दोलनों तथा संगठनों की उपेक्षा की। बटकर कमेटी ने रियासतों के जन–सम्मेलनों पर कोई ध्यान नहीं दिया तथा गोलमेज सम्मेलनों में सिर्फ राजा और उनके प्रतिनिधियों को ही आमन्त्रित किया था। भारत सरकार अधिनियम 1935 के तहत राजाओं की माँग, कि रियासतों का प्रतिनिधित्व संघीय विद्यान मण्डल में उनके द्वारा नामित व्यक्तियों द्वारा किया जाये न कि चुने हुए व्यक्तियों द्वारा, को मान लिया गया। इतना ही नहीं, अंग्रजी सरकार द्वारा उनकी बाहर आक्रमण तथा आन्तरिक विद्रोह से सुरक्षा के कारण शासकों ने रियासतां में प्रतिनिधि संस्थाएँ प्रारम्भ करने तथा उपने अधिकारों को छोड़ने में कोई रूचि नहीं दिखलाई।

दूसरी ओर ब्रिटिश रियासतों में जनतांत्रिक संस्थाओं ने प्रगति की तथा ब्रिटिश भारत में अपने साथी–भाईयों के द्वारा प्राप्त अधिकारों एवं उनके साथ कदम मिलाकर चलने की उत्सुकता ने देशी रियासतों के लोगों के ह्रदयों को उद्वेलित कर दिया। कैथ जैसी संवैधानिक अधिकृति ने भी स्वीकार किया कि, "परम सत्ता ने निश्चय किया है कि ब्रिटिश भारत के लोगों को राजनैतिक अधिकारों का उपभोग करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए एवं उन्हें राजनैतिक परिस्थिति की ओर अग्रसर होने के अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता है।" सन् 1920 में कॉंग्रेस के द्वारा प्रारम्भ किये गये असहयोग ने भी रियासतों की प्रजा को ब्रिटिश इण्डिया के लोगों के उदाहरण का अनुसरण करने के लिए प्रोत्साहित किया। इतना ही नहीं रियासत के लोगों की शिकायतों से इन्कार करने पर लोगों को अपने स्वयं के पाँवों पर खड़े होने के लिए बाध्य होना पड़ा। असहयोग के व्यापक प्रभाव को देखते हुए उसे 'गांधी की आँधी' की संज्ञा दी गयी। उस समय ऐसा लग रहा था कि जैसे 'महात्मा गांधी तरंगश्रृंग पर सवार थे और उनके सम्मुख कोई बाधा नही थी।' भारतीय मानस से अंग्रेजी सत्ता के आतंक का निवारण करने वाले असहयोग आन्दोलन के दूरगामी प्रभाव हुए। उस समय यूरोपीय हलकों मे भारत को लुप्त अधिराज्य (LOST DOMINION) करने का फैशन चल पड़ा था।

देशी रियासतों के शासक ब्रिटिश भारत को उद्वेलित करने वाली जागरण की इस प्रबल लहर से आशंकित हो गये। वे जनसाधारण के हाथों में आए असहयोग के अस्त्र से भयभीत थे। इस समय पं. मोतीलाल नेहरू ने राजपूताना मध्यभातर व अजमेर मेरवाड़ा के राजनैतिक सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में राजाओं को आश्वस्त करते हुए कहा, "इस अवसर पर मैं राजाओं को भारोसा दिलाना चाहूँगा कि ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध चलाये गए असहयोग आन्दोलन से उन्हें किसी प्रकार आशंकित होने की आवश्यकता नहीं है। इसका लक्ष्य देशी राज्य नहीं है।" निस्सन्देह देशी रियासतें असहयोग के दायरे से बाहर थी, फिर भी रियासती शासक इससे चिंतित थे, क्योंकि ब्रिटिश भारत में घटित होने वाली घटनाएँ रजवाड़ों के प्रजाजनों के लिए जागृति का आधार बन रही थीं। राजस्थान के अग्रणी प्रबुद्ध जन भारत की राजनैतिक स्थिति मे आए इस बदलाव से अवगत थे। उन्हें कांग्रेस के उद्देश्य व आकांक्षाओं से सहानुभूति थी और वे रियासती प्रजाजनों में जागृति का प्रसार चाहते थे। इस बात को मद्देनजर रखते हुए 21 दिसम्बर, 1919 को दिल्ली के चॉंदनी चौक स्थिति मारवाड़ी पुस्तकालय में राजपूताना मध्य भारत सभा नामक संस्था की स्थापना की गयी।

सभा का लक्ष्य रियासतों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना व रियासती प्रजाजनों को कांग्रेस संगठन का

सदस्य बनाना था। सभा के संस्थापक थे– श्री जमनालाल बजाज (सीकर), अर्जुन लाल सेठी (जयपुर), गोविन्द दास (जबलपुर), विजय सिंह पथिक (बुलंदशहर), चाँदकरण शारदा (अजमेर), गणेश शंकर (ग्वालियर), स्वामी नृसिंह देव (जयपुर), व ठाकुर केसरी सिंह बारहठ (शाहपुरा)। इसके सदस्यों ने पहले स्वयं को कांग्रेस से जोड़ना चाहा पर शुरू में उन्हें सफलता नहीं मिली। बाद में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में उसका कांग्रेस से सम्बन्ध जुड़ गया। सभा ने वर्धा से 'राजस्थान केसरी' नामक पत्र शरू किया तथा 'राजस्थान सेवा संघ' व उसके मुख पुत्र 'तरूण राजस्थान' की अमूल्य सहायता की। रियासती प्रजा के जागरण के उद्देश्य से बनायी गयी संस्थाओं में यह प्रारम्भिक संस्था की। कांग्रेस नेताओं के नाम लिखी गयी एक खुली चिट्ठी में विजय सिंह पथिक ने लिखा, "क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है कि आपने देशी रियासतों में रहने वाले अपने भाईयों की दुर्दशा पर एक क्षण के लिए भी नहीं सोचा। दक्षिण अफ्रीका, फिजी व ट्रिनिडाड में हमारे भाईयों के साथ होने वाले दुर्व्यवहार के समाचारों से तो आप अधीर हो जातें है। मिश्र व आयरलैण्ड की दुरावस्था पर आपके आँसू निकल पड़ते है, ब्रिटिश भारत की नौकरशाही का स्वेच्छाचार आपको बेतरह खटकता है, परन्तु यह कितने दुःख व आश्चर्य की बात है कि अपने देश में ही उन बंधुओं पर, जो दुःख में सदैव आपके साथ है और रहेंने, उन पर अन्य सब स्थानों से अधिक अत्याचार और स्वैच्छाचार होता देखकर भी आपका हृदय विचलित नहीं होता। देशभर की राष्ट्रीय महासभा के तोरणद्वार उन अभागों के लिए बंद है।"

असहयोग आन्दोलन से सभी वर्गों मे हलचल दिखायी देनी शुरू हुई। स्वराज्य की माँग जोर पकड़ने लगी। ब्रिटिश भारत में होने वाली हलचल का रियासतों पर यत् किंचित् असर पड़ना लाजमी था, यद्यपि राजाओं ने अपने प्रदेशों को अंधकार में बनाये रखने की पुख्ता व्यवस्था कर रखी थी। ब्रिटिश सरकार राजाओं के हाथ और मजबूत करना चाहती थी। इस उद्देश्य से केन्द्रीय धारासभा में गृह सदस्य विलियम विन्सेंट ने 23 सितम्बर, 1922 को "इण्डियन स्टेट्स" (प्रोटेक्शन अगेन्स्ट डिसअफेक्शन) विधेयक प्रस्तुत किया। इस विधेयक में किसी भी तरह की राजद्रोहात्मक सामग्री को दंडनीय अपराध बना दिया गया। जब इसे ब्रिटिश संसद की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया गया तो कर्नल वेजवुड और कतिपय अन्य सदस्यों ने इसका तीव्र विरोध किया। उनके अनुसार यह कहना कि भारतीय राजा अपने प्रजाजनों के साथ अपनी संतानों की भांति व्यवहार करते है, वैसा ही है जैसे हेनरी अष्टम् व लुई चौहदवाँ अपने प्रजाजनां के प्रति संतानवत व्यवहार करते थे।

भारतीय रियासतों की समस्या ब्रिटिया संरक्षण में पलने वाली स्वैच्छाचारिता के कारण पहले से ही जटिल थी। मॉण्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों के बाद उसमें और वृद्धि हुई। इस सुधार योजना द्वारा ब्रिटिश प्रान्तों में आंशिका रू॰ से उत्तरदायी शासन लागू होने से निरंकुशा शासन के तले रही रियासती जनता की समस्याओं की ओर भी लोगों का ध्यान गया। ब्रिटिश भारत की भांति रियासतों में भी संवैधानिक शासन व शासन में लोगों की भागीदारी की आवाज धीरे–धीरे उठने लगी। समय के साथ यह माँग बलवती होती गयी और इस माँग की तीव्रता और गंभीरता को व्यक्त करने वाले संकेत भी साफ नजर आने लग गये थे। रियासती प्रजा ने कई माध्यमों से स्वयं को संगठित करना प्रारम्भ कर दिया था। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद रियासतों में एक नई हलचल दिखायी दे रही थी। सारी अप्राकृतिक बाधाएँ टूट रही थीं। जिज्ञासा व खोजबन की भावना उदासीनता व जड़ता का स्थान ले रही थी। जनसाधारण में बेचैनी व असंतोष की स्वस्थ भावनाएँ पनपना शुरू हो गयी थी। सरकारी व गैर सरकारी क्षेत्रों में अपना हृदयय टटोलने की स्थिति आ गयी थी। बुद्धिजीवी वर्ग मे स्वदेशवासियों को प्राप्त अधिकार व स्वतंत्रता हासिल करने की प्रगति एवं दिशा में उनके साथ कदम मिलाकर चलने की आकांक्षा जोर पकड़ती जा रही थी।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशनों के साथ प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले रियासती प्रजाजनों के सम्मेलन में यह परिवर्तन स्पष्ट लक्षित होने लगा था। रियासती प्रजाजन कॉन्फ्रेंस का देशी राज्यों के प्रजाजनों के लिए वही महत्त्व था, जो ब्रिटिश भारत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का था। 30 दिसम्बर 1924 को बेलगाँव में आयोजित रियासती

प्रजाजन कॉन्फ्रेंस का अधिवेशन महत्त्वपूर्ण था। नरसिंह चिंतामणि केलकर की अध्यक्षता में सम्पन्न इस अधिवेशन में अनेक प्रतिनिधि शरीक हुए। देशी रियासतों में व्याप्त दोषों व कमियों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए अध्यक्ष ने कांग्रेस से उनके मामलों में सक्रिय रूचि लेने का आग्रह किया। विजयसिंह पथिक कांग्रेस के नाम लिखे गये अपने खुले पत्र में इसकी महती आवश्यकता का भलीभांति प्रतिपादन कर चुके थे। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, यह उन्हीं के प्रयत्नों का परिणाम था कि कांग्रेस ने नागपुर अधिवेशन में अपनी नीति में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करते हुए देशी रियासतों के प्रति अहस्तक्षेप एवं उदासीनता की नीति का परित्याग करते हुए यह प्रस्ताव पारित किया कि अब से कांग्रेस देशी रियासतों सहित समस्त भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रयास करेगी। पथिकजी ने कांग्रेस द्वारा देशी रियासतों के आठ करोड़ प्रजाजनों को भाग्य भरोसे छोड़ जाने की नीति के अनौचित्य को भली–भांति उजागर कर दिया था। उनके द्वारा अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् का पहला अधिवेशन शनिवार 17–18 दिसम्बर 1927 को बम्बई में हुआ। इसके लिये 'देशी राज्यो के निवासियों' को 'अपने हृदयाद्गार प्रकट करने के लिए' अधिकाधिक संख्या में पधारने का नम्र निवेदन अमृतलाल वी.ठक्कर, जी.आर.अभ्यकंर, अमृलाल डी.सेढ, बालकृष्ण पोद्दार, रंगीलदास कापड़िया व बलवंतराय मेहता (महासचिवों) के हस्ताक्षरों से भेजा गया। इस आमंत्रण में सूचित किया गया कि 'अलोर निवासी दीवान बहादुर रामचन्द्रराव सर्वसम्मति से परिषद् के सभापति चुने गए है।' वे धारा सभा के उपसभापति रह चुके थे। संवैधानिक कानून के अद्वितीय विद्वान श्री राव भारतीय सैन्डर्स कमेटी के सदस्य रह चुके थे। अधिवेशन का पंडाल माधोबाग मे रखा गया। पन्द्रह सौ से अधिक व्यक्तियों ने इसमें भाग लिया। इस प्रकार अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् की स्थापना हुई, जिसका मुख्यालय बम्बई में रखा गया।

***व्याख्यता**
इतिहास विभाग
राजकीय कला महाविद्यालय, दौसा (राज.)

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गहलोत, जगदीश सिंह : राजपूताने का इतिहास (भाग 2) द्वितीय संस्करण, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1979.
2. शर्मा, डॉ. गोपीनाथ : राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत, स्टूडेंट बुक कम्पनी, जयपुर, 1985.
3. गुप्ता, मोहन लाल : जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, साहित्यगार, जयपुर, 2002.
4. झांझड़, सुदर्शन सिंह : शेखावाटी का प्राचीन इतिहास, शेखावाटी शोध संस्थान, झुन्झुनू, 1980.
5. जिज्ञासु, मोहन लाल : चारण साहित्य का इतिहास, शेखवाटी शोध संस्थान, झुन्झुनू, 1979.
6. जैन, डॉ. एम.एस. : आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, तृतीय संस्करण, 1995.
7. मंडावा, कु. देवीसिंह : राजस्थान के कछवाहा, मंडावा प्रकाशन, जयपुर, 1984.